भारतीय दर्शनोंका मूल आधार

'दर्शन' शब्द संस्कृत भाषाका शब्द है। यह शब्द संस्कृतव्याकरणके अनुसार "दृश्यते निर्णीयते वस्तु-तत्त्वमनेनेति दर्शनम्" अथवा "दृश्यते = निर्णीयत इदं (वस्तु तत्त्वं) इति दर्शनम्" इन दोनों व्युत्पत्तियोंके आधारपर "दृश्" धातुसे निष्पन्न होता है। पहली व्युत्पत्तिके आधारपर निष्पन्न 'दर्शन' शब्द तर्क, वितर्क मंथन या परीक्षा स्वरूप उस विचारधाराका नाम है जो तत्त्वोंके निर्णयमें प्रयोजक हुआ करती है। दूसरी व्युत्पत्तिके आधारपर निष्पन्न 'दर्शन' शब्दका अर्थ उल्लिखित विचारधारा द्वारा निर्णीत तत्त्वोंकी स्वीकारता होता है। इस प्रकार 'दर्शन' शब्द दार्शनिक जगतमें इन दोनों प्रकारके अर्थोंमें व्यवहृत हुआ है अर्थात् भिन्न-भिन्न दर्शनोंकी जो तत्त्वसम्बन्धी मान्यतायें हैं उनको और जिन तार्किक मुद्दोंके आधारपर उन मान्यताओंका समर्थन होता है उन तार्किक मुद्दोंको दर्शनशास्त्रके अन्तर्गत स्वीकार किया है।

वर्तमान दृश्य जगत्‌की परंपराको सभी दर्शनोंमें किसी-न-किसी रूपसे अनादि स्वीकार किया गया है। इसलिए जगतकी इस परंपरामें न मालूम कितने दर्शन विकासको प्राप्त होकर विलुप्त हो गये होंगे और कौन कह सकता है कि भविष्यमें भी नये-नये दर्शनोंका प्रादुर्भाव नहीं होगा। परन्तु आज हम सिर्फ उन्हीं दर्शनोंके बारेमें कुछ सोच सकते हैं जो उपलब्ध हैं या साहित्यके आधारपर जिनकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ये दर्शन सबसे पहले भारतीय और अभारतीय (पाश्चात्य) दर्शनोंके रूपमें हमारे सामने आते हैं। जिनका प्रादुर्भाव भारतवर्षमें हुआ है वे दर्शन भारतीय और जिनका प्रादुर्भाव भारतवर्षके बाहर पाश्चात्य देशोंमें हुआ है वे अभारतीय या पाश्चात्य दर्शनोंके नामसे पुकारे जाते हैं।

भारतीय दर्शन भी दो भागोंमें विभक्त किये गये हैं—वैदिक दर्शन और अवैदिक दर्शन। वैदिक परम्पराके अन्दर जिनका प्रादुर्भाव और विकास हुआ है तथा जो वैदिक परम्पराके पोषक दर्शन हैं वे वैदिक दर्शन माने गये हैं और वैदिक परम्परासे भिन्न जिनकी स्वतंत्र परम्परा है या जो वैदिक परम्पराके विरोधी दर्शन हैं उनको अवैदिक दर्शन स्वीकार किया गया है। वैदिक दर्शनोंमें मुख्यतः सांख्य, वेदान्त, मीमांसा, योग, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन माने गये हैं और जैन, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शनोंको अवैदिक दर्शन स्वीकार किया गया है। इनके अलावा छोटे-मोटे भेदों और उपभेदोंके रूपमें और भी वैदिक तथा अवैदिक दर्शनोंको गणना की जा सकती है, परन्तु अनावश्यक विचारके भयसे उन्हें इस विभागक्रममें स्थान नहीं दिया गया है। आजकलके बहुतसे विद्वानोंमें गीताको एक स्वतन्त्र दर्शन माननेकी प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु वास्तवमें गीता कर्त्तव्यरूप धार्मिक या आध्यात्मिक महान उपदेश मात्र है। यही कारण है कि गीतामें स्थान-स्थानपर श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनके लिए कर्मयोगकी ओर झुकनेकी प्रेरणा की गई है। गीताको कर्मयोगका प्रतिपादक ग्रन्थ मानना भी मेरे विचारके अनुसार ठीक नहीं है। लेकिन मैं इतना अवश्य स्वीकार करता हूँ कि गीतामें कर्म-योगके आधारपर प्रायः समस्त वैदिक दर्शनोंके समन्वय करनेका प्रयत्न किया गया है।

इन वैदिक और अवैदिक दर्शनोंको दार्शनिक विकासके मध्य युगमें क्रमसे आस्तिक और नास्तिक नामोंसे भी पुकारा जाने लगा था। परन्तु मालूम पड़ता है कि वैदिक और अवैदिक दर्शनोंका इस प्रकारका नाम-करण वेदपरम्पराके समर्थन और विरोधके कारण प्रशंसा और निन्दा रूपमें साम्प्रदायिक व्यामोहके वशीभूत लोगों द्वारा किया गया है, कारण कि यदि प्राणियोंका जन्मान्तररूप परलोक, स्वर्ग और नरक तथा मुक्तिके न मानने रूप अर्थमें नास्तिक शब्दका प्रयोग किया जाय तो जैन और बौद्ध ये दोनों अवैदिक दर्शन नास्तिक दर्शनोंकी कोटिसे निकलकर आस्तिक दर्शनोंकी कोटिमें आ जायेंगे; क्योंकि ये दोनों दर्शन प्राणियोंके जन्मान्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप परलोक, स्वर्ग और नरक तथा मुक्तिका समर्थन करते हैं। और यदि जगतका कर्ता अनादिनिधन ईश्वरको न मानने रूप अर्थमें नास्तिक शब्दका प्रयोग किया जाय तो सांख्य और मीमांसा इन दोनों वैदिक दर्शनोंको उपस्थित दर्शनोंकी कोटिमेंसे निकालकर नास्तिक कोटिमें पटक देना पड़ेगा, क्योंकि ये दोनों दर्शन अनादिनिधन ईश्वरको जगतका कर्ता माननेसे इन्कार करते हैं। इस प्रकार ऊपर बतलाया गया सम्पूर्ण विभागक्रम अव्यवस्थित हो गया है। "नास्तिको वेदनिन्दकः" इत्यादि प्रसिद्ध वाक्य भी हमें यह बतला रहे हैं कि वेद परम्पराको न मानने वालोंके बारेमें ही नास्तिक शब्दका प्रयोग किया गया है। प्रायः सभी सम्प्रदायवादियोंने अपने सम्प्रदायकी परम्पराके माननेवालोंको आस्तिक और अपनेसे भिन्न दूसरे सम्प्रदायकी परम्पराके माननेवालोंको नास्तिक स्वीकार किया है। जैन सम्प्रदायमें भी जैन परम्पराके माननेवालोंको सम्यक्दृष्टि और जैनेतर परम्पराके माननेवालोंको मिथ्यादृष्टि कहनेका रिवाज प्रचलित है। मेरे कहनेका मतलब यह है कि भारतीय दर्शनका जो आस्तिक और नास्तिक दर्शनोंके रूपमें विभाग किया गया है वह निरर्थक एवं अनुचित है। इसलिए उनका विभाग उल्लिखित वैदिक और अवैदिक दर्शनोंके रूपमें ही करना चाहिए।

उल्लिखित दर्शनोंकी उत्पत्तिके बारेमें जब हम सोचते हैं, तो हमें इनके मूलमें दो प्रकारके वादोंका पता चलता है—एक अस्तित्ववाद और दूसरा उपयोगितावाद। अर्थात् ये सभी दर्शन अस्तित्ववाद या उपयोगितावादके आधारपर प्रादुर्भूत हुए हैं, ऐसा माना जा सकता है। जगत क्या और कैसा है ? जगतमें कितने पदार्थोंका अस्तित्व है ? उन पदार्थोंके कैसे-कैसे परिणाम होते हैं ? इत्यादि प्रश्नोंके आधारपर सामान्यतया तत्त्वोंका विचार करना अस्तित्ववाद कहलाता है और जगतके प्राणी दुःखी क्यों हैं ? वे सुखी कैसे हो सकते हैं ? इत्यादि प्रश्नोंके आधारपर सिर्फ लोककल्याणोपयोगी तत्त्वोंके बारेमें विचार करना उपयोगितावाद समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि अस्तित्ववादके आधारपर वे सब तत्त्व मान्यताकी कोटिमें आ जाते हैं जिनका अस्तित्व प्रमाणोंके आधारपर सिद्ध होता हो और उपयोगितावादके आधारपर सिर्फ वे ही तत्त्व मान्यताकी कोटिमें पहुँचते हैं जो लोककल्याणके लिये उपयोगी सिद्ध होते हों। मेरी रायके मुताबिक इस उपयोगितावादका ही अपर नाम आध्यात्मिकवाद और अस्तित्ववादका ही दूसरा नाम आधिभौतिकवाद समझना चाहिये। जिन विद्वानोंका यह ख्याल है कि समस्त चेतन और अचेतन जगतकी सृष्टि अथवा विकास आत्मासे मानना आध्यात्मिकवाद और उपर्युक्त जगतकी सृष्टि अथवा विकास अचेतन अर्थात् जड़ पदार्थसे मानना आधिभौतिकवाद है, उन विद्वानोंके साथ मेरा स्पष्ट मतभेद है और इस मतभेदसे मेरा तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिकवाद और आधिभौतिकवादके उल्लिखित अर्थके मुताबिक जो वेदान्त दर्शनको आध्यात्मिक दर्शन तथा चार्वाक दर्शनको आधिभौतिक दर्शन मान लिया गया है वह ठीक नहीं है। मैंने अभारतीय दर्शनोंका तो नहीं, परन्तु भारतीय दर्शनोंका जो थोड़ा बहुत अध्ययन एवं चिन्तन किया है उससे मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि सांख्य, वेदान्त, मीमांसा, योग, न्याय और वैशेषिक ये वैदिक दर्शन तथा जैन, बौद्ध और चार्वाक ये सभी अवैदिक दर्शन पूर्वोक्त उपयोगितावादके आधारपर ही प्रादुर्भूत हुए हैं, इसलिये ये सभी दर्शन आध्यात्मिकवादके अंतर्गत माने जाने चाहिए। किसी भी दर्शनका अनुयायी आज अपने दर्शनके बारमें यह आक्षेप सहन नहीं कर सकता है कि उसके दर्शनका विकास लोककल्याणके लिए नहीं हुआ है और इसका भी कारण यह है कि भारतवर्ष सर्वदा धर्मप्रधान देश रहा है। इसलिए समस्त भारतीय दर्शनोंका मूल आधार उपयोगितावादको मानना युक्तिपूर्ण है।

लोककल्याणशब्दमें पठित लोकशब्द "जगतका प्राणिसमूह" अर्थमें प्रयुक्त होता हुआ देखा जाता है, इसलिए यहाँपर लोककल्याणशब्दसे "जगतके प्राणिसमूहका कल्याण" अर्थ ग्रहण करना चाहिये। कोई-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई दर्शन प्राणियोंके दृश्य और अदृश्य दो भेद स्वीकार करते हैं और किन्हीं-किन्हीं दर्शनोंमें सिर्फ दृश्य प्राणियोंके अस्तित्वको ही स्वीकार किया गया है। दृश्य प्राणी भी दो प्रकारके पाये जाते हैं। एक प्रकारके दृश्य प्राणी वे हैं जिनका जीवन प्रायः समष्टि-प्रधान है और दूसरे प्रकारके दृश्य प्राणी वे हैं जिनका जीवन प्रायः व्यष्टिप्रधान है। मनुष्य समष्टि-प्रधान जीवनवाले प्राणियोंमेंसे है क्योंकि मनुष्योंका जीवन प्रायः एक दूसरे मनुष्यकी सद्भावना, सहानुभूति और सहायतापर निर्भर है। बाकीके सभी दृश्य प्राणी पशु, पक्षी, सर्प, बिच्छू, कीट, पतंग वगैरह व्यष्टि-प्रधान जीवन वाले प्राणी कहे जा सकते हैं; क्योंकि इनके जीवनमें मनुष्यों जैसी परस्परकी सद्भावना, सहानुभूति और सहायताकी आवश्यकता प्रायः देखनेमें नहीं आती है! व्यष्टिप्रधान जीवनकी समानताके कारण ही जैनदर्शनमें इन पशु, पक्षी आदि प्राणियोंका तिर्यग् (तिर्यञ्च) नामसे पुकारा जाता है, कारण कि तिर्यक् शब्दका समानता अर्थमें प्रयोग पाया जाता है। सभी भारतीय दर्शनकारोंने अपने-अपने दर्शनके विकासमें अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार जगत्के इन दृश्य और अदृश्य प्राणियोंके कल्याणका लक्ष्य अवश्य रखा है। एक चार्वाक दर्शनको छोड़कर उल्लिखित सभी भारतीय दर्शनों-में प्राणियोंके जन्मान्तररूप परलोक, स्वर्ग और नरक तथा मुक्तिका समर्थन किया गया है, इसलिये इन दर्शनोंके आविष्कर्ताओंकी लोककल्याणभावनाके प्रति तो संदेह करनेकी गुंजाइश ही नहीं है। लेकिन उपलब्ध साहित्यसे जो थोड़ा-बहुत चार्वाक दर्शनका हमें दिग्दर्शन होता है उससे उसके आविष्कर्ताकी लोककल्याण भावनाका पता भी हमें सहज हीमें लग जाता है।

"श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना, नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः॥"

इस पद्यमें चार्वाकदर्शनकी आत्माका स्पष्ट आभास मिलता है। इस पद्यका आशय यह है कि "धर्म मनुष्यके कर्त्तव्यमार्गका नाम है और वह जब लोक-कल्याणके लिये है तो उसे अखंड एकरूप होना चाहिये-नाना रूप नहीं। लेकिन धर्मतत्त्वकी प्रतिपादक श्रुतियाँ और स्मृतियाँ नाना और परस्पर-विरोधी देखनेमें आती हैं। हमारे धर्मप्रवर्तक महात्माओंने भी धर्मतत्त्वका प्रतिपादन एकरूपसे न करके भिन्न-भिन्न रूपसे किया है इसलिये उनके वचनोंको भी सर्वसम्मत प्रमाण मानना असम्भव है। ऐसी हालतमें सर्वसाधा-रणके लिये धर्मतत्त्व एक गूढ़ पहेली बना हुआ है। अर्थात् धर्मतत्त्वके समझनेमें हमारे लिये श्रुति, स्मृति या कोई भी धर्मप्रवर्तक सहायक नहीं हो सकता है। इसलिए धर्मतत्त्वकी पहेलीमें न उलझ करके हमें अपने कर्त्तव्यमार्गका निर्णय महात्मापुरुषोंके कर्त्तव्यमार्गके आधारपर करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि महात्मा पुरुषोंका जीवन स्वपरकल्याणके लिये ही होता है, इसलिये हमारा जो कर्त्तव्य स्वपरकल्याणविरोधी न हो उसे ही अविवाद रूपसे हमें धर्म समझना चाहिये।" मालूम पड़ता है कि चार्वाक दर्शनके आविष्कर्ताका अन्तःकरण धर्मके बारेमें पैदा हुए लोककल्याणके लिए खतरनाक मतभेदोंको देखकर ऊब गया था, इसलिए उसने दुनियाके समक्ष इस बातको रखनेका प्रयत्न किया था कि जन्मान्तररूप परलोक–स्वर्ग और नरक तथा मुक्ति जैसे अदृश्य तत्त्वोंकी चर्चा, जो कि विवादके कारण जनहितकी घातक हो रही है—को छोड़कर केवल हमें ऐसा कर्त्तव्यमार्ग चुन लेना चाहिये, जो जनहितका साधक हो सकता है और ऐसे कर्त्तव्यमार्गमें किसीको विवाद करनेकी भी कम गुंजाइश रह सकती है।

"यावज्जीवं सुखी जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥"

यह जो चार्वाकदर्शनकी मान्यता बतलाई जाती है वह कुछ भ्रममूलक जान पड़ती है। इस प्रकार दूसरे भारतीय दर्शनोंकी तरह चार्वाकदर्शनको भी उपयोगितावाद अर्थात् आध्यात्मिकताकी कोटिसे बाह्य नहीं किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त भारतीय दर्शनोंमें बीजरूपसे इस उपयोगितावादको स्वीकार कर लेने पर ये सभी दर्शन एक-दूसरे दर्शनके, जो अत्यन्त विरोधी मालूम पड़ते हैं, ऐसा न होकर अत्यन्त निकटतम मित्रोंके समान दिखने लगेंगे। तात्पर्य यह है कि उल्लिखित प्रकारसे चार्वाक दर्शनमें छिपे हुए उपयोगिताके रहस्यको समझ लेनेपर कौन कह सकता है कि उसका परलोकादिके बारेसे दूसरे दर्शनोंके साथ जो मतभेद है वह खतरनाक है। कारण कि जहाँ दूसरे दर्शन परलोकादिको आधार मानकर मनुष्योंके लिये योग्य कर्त्तव्यमार्गपर चलनेकी प्रेरणा करते हैं वहाँ चार्वाकदर्शन सिर्फ वर्तमान जीवनको सुखी बनानेके उद्देश्यसे मनुष्योंके लिये उसी योग्य कर्त्तव्यमार्गपर चलनेकी प्रेरणा करता है। तथा जब परलोक या स्वर्गादिके अस्तित्वको स्वीकार करते हुये भी सर्वदर्शनकारोंको यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त मानना पड़ता है कि मनुष्य अपने वर्तमान जीवनमें अच्छे कृत्य करनेसे ही परलोकमें सुखी हो सकता है या स्वर्ग पा सकता है तो परलोक या स्वर्गके अस्तित्वको न मानने मात्रसे चार्वाक मतानुयायीको यदि वह अच्छे कृत्य करता है तो परलोकमें सुख या स्वर्गकी प्राप्तिसे कौन रोक सकता है? इसी तरह नरकका अस्तित्व न मानने मात्रसे पाप करते हुए भी उसका नरकमें जाना असंभव कैसे हो सकता है? परलोक या स्वर्गादिके अस्तित्वको न मानने वाला व्यक्ति अच्छे कृत्य कर ही नहीं सकता है, यह बात कोई भी व्यक्ति माननेको तैयार न होगा, कारण कि हम पहले बतला आये हैं कि मनुष्य-का जीवन परस्परकी सद्भावना, सहानुभूति और सहायताके आधारपर ही सुखी हो सकता है। यदि एक मनुष्यको सुखी जीवन बितानेके संपूर्ण साधन उपलब्ध हैं और दूसरा उसका पड़ोसी मनुष्य चार दिनसे भूखा पड़ा हुआ है तो ऐसी हालतमें या तो पहले व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके बारेमें सहायताके रूपमें अपना कोई कर्त्तव्य निश्चित करना होगा, अन्यथा नियमसे दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्तिके सुखी जीवनको ठेस पहुँचानेका कारण बन जायगा। तात्पर्य यह है कि हमें परलोककी मान्यतासे अच्छे कृत्य करनेके लिये जितनी प्रेरणा मिल सकती है उससे कहीं अधिक प्रेरणा वर्तमान जीवनको सुखी बनानेकी आकांक्षासे मिलती है। चार्वाक दर्शनका अभिप्राय इतना ही है।

बौद्धोंके क्षणिकवाद और ईश्वरकर्तृत्ववादियोंके ईश्वरकर्तृत्वमें भी वही उपयोगितावादका रहस्य छिपा हुआ है। बौद्ध दर्शनमें एक वाक्य पाया जाता है—"वस्तुनि क्षणिकपरिकल्पना आत्मबुद्धिनिरासार्थम्" अर्थात् पदार्थोंमें जगत्के प्राणियोंके अनुचित राग, द्वेष और मोहको रोकनेके लिये ही बौद्धोंने पदार्थोंकी अस्थिरताका सिद्धान्त स्वीकार किया है। इसी प्रकार जगत्का कर्ता एक अनादिनिधन ईश्वरको मान लेनेसे संसारके बहुजन समाजको अपने जीवनके सुधारमें काफी प्रेरणा मिल सकती है। इस उपयोगितावादके आधार पर ही ईश्वरकर्तृत्वाद स्वीकार किया था। परन्तु अफसोस है कि धीरे-धीरे सभी दर्शन उपयोगितावादके मूल-भूत आधारसे हटकर अस्तित्ववादके उदरमें समा गये अर्थात् इन दर्शनोंमें जो तत्त्व उपयोगितावादके आधारपर निश्चित किये गये थे उन तत्त्वोंके बारेमें अस्तित्ववादके आधारपर विचार होने लग गया और इसका ही यह परिणाम है कि सभी दर्शनकारोंने अपनेसे भिन्न दूसरे दर्शनोंको उनकी उपयोगिताके ऊपर ध्यान न देते हुये उन्हें असत्य सिद्ध करनेका प्रयास किया है।

सांख्य और वेदान्त दोनों दर्शनोंकी तत्त्व-मान्यतामें उपयोगितावादकी स्पष्ट झलक दिखाई देती हैं। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिनामका चेतनाशून्य पदार्थ और पुरुषनामका चेतनात्मक आत्मरूप पदार्थ इस प्रकार दो मूल तत्त्व स्वीकार किये गये हैं। इनमेंसे प्रकृतिको एक और पुरुषको अनेक रूपमें स्वीकार किया गया है। यह एक प्रकृति अनेक पुरुषोंके साथ संयुक्त होकर पुरुषोंमें मालूम पड़नेवाले बुद्धि, अहंकार आदि नानारूपसे परिणत हो जाया करती है। इसका अर्थ यह है कि जब तक प्रकृति पुरुषके साथ संयुक्त है तब तक वह बुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार आदि नानारूप है और जब इसका पुरुषके साथ हुए संयोगका अभाव हो जाता है तब अपने स्वाभाविक रूपमें पहुँच जाती है। प्रकृतिका पुरुषके साथ संयोग होकर बुद्धि, अहंकार आदि रूप हो जानेका नाम ही सांख्य दर्शनमें सृष्टि या संसार माना गया है। यह प्रकृतिका पुरुषके साथ संयोग होकर बुद्धि, अहंकार आदि रूप हो जाना कैसे संसारको ध्वनित करता है ? यही सबसे अधिक विचारणीय प्रश्न है।

सांख्यदर्शनमें प्रकृतिका पुरुषके साथ संयोग होकर बुद्धि, अहंकार आदि नानारूप होनेकी परंपरा इस प्रकार बतलायी गयी है—प्रकृति पुरुषके साथ संयुक्त होकर बुद्धिरूप परिणत होती है, यह बुद्धि अहंकाररूप परिणत होती है, अहंकार पाँच ज्ञानेद्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा पाँच तन्मात्रा इस प्रकार इन सोलह तत्त्वरूप परिणत होता है और इन सोलह तत्त्वोंमेंसे पाँच तन्मात्रायें अन्तिम पाँच महाभूतरूप परिणत हो जाया करती हैं। इस व्यवस्थामें विचारणीय बात यह है कि जब पुरुष नाना हैं तो भिन्न-भिन्न पुरुषोंके साथ संयुक्त प्रकृतिके विपरिणामस्वरूप बुद्धितत्त्वमें भी नानात्त्व स्वीकार करना होगा और इस प्रकार नाना बुद्धितत्त्वोंके विपरिणामस्वरूप नाना अहंकारतत्त्व, नाना अहंकारतत्त्वोंके विपरिणामस्वरूप नाना पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आदि सोलह-सोलह प्रकारके तत्त्व और इन सोलह प्रकारके तत्त्वोंमें अन्तर्भूत नाना पाँच प्रकारकी तन्मात्राओंके विपरिणामस्वरूप नाना पंच महाभूत स्वीकार करने होंगे। इस तरहसे जब मूलभूत एक प्रकृतिके ही विपरिणामस्वरूप पंच महाभूत तककी सम्पूर्ण परम्परामें अनिवार्यरूपसे नानात्व स्वीकार करना पड़ता है तो इसमें एक आपत्ति यह उपस्थित होती है कि हमें पंचमहाभूत स्वरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वोंमें गर्भित आकाशतत्त्वको भी नानारूप मानना होगा। दूसरी आपत्ति यह उपस्थित होती है कि जब पुरुषकी संयुक्त हालतमें ही प्रकृतिका विपरिणाम होता है तो ये महाभूतस्वरूप पंचतत्त्व भी प्रकृति और पुरुषकी संयुक्त हालतके प्रकृति विपरिणाम मानने होंगे। प्रकृति और पुरुषकी संयुक्त हालतसे भिन्न स्वरूप इनका स्वतन्त्र अस्तित्व मानना असंगत होगा। इन आपत्तियोंके आधारपर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पुरुषके साथ संयोग होनेसे प्रकृतिकी तेतीस तत्त्व की जो परम्परा है वह भिन्न-भिन्न पुरुषोंकी भिन्न-भिन्न देह तक ही सीमित है अर्थात् भिन्न-भिन्न पुरुषोंके साथ संयोग होनेपर होनेवाली प्रकृतिकी बुद्धिसे लेकर स्थूल शरीर-रचना तककी परम्पराका नाम ही सांख्यदर्शनमें सृष्टि या संसार माना गया है। उसकी सृष्टिमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व गर्भित नहीं हैं। गीताके १३वें अध्यायमें जो क्षेत्र, क्षेत्रज्ञविषयक विचार किया गया है उसमें क्षेत्रका अर्थ शरीर ही किया गया है और उसका विस्तार सांख्यकी मान्यताके अनुसार प्रकृतिके विकार स्वरूप बुद्धिसे लेकर पंच महाभूत पर्यंत किया है। सांख्य दर्शनकी यह मान्यता वेदान्त दर्शनको भी अभीष्ट है। भेद सिर्फ इतना है कि वेदान्त दर्शन एक प्रकृति और नाना पुरुष इन दोनों प्रकारके तत्त्वोंको सांख्यदर्शनकी तरह मूल तत्त्व स्वीकार नहीं करता है। वह इन दोनोंके मूलमें एक परब्रह्मनामक तत्त्वको स्वीकार करता है। इस प्रकार वेदान्तदर्शनमें भी परब्रह्मके विपरिणामस्वरूप प्रकृति और पुरुष, जिनको वहाँ पर क्रमसे अविद्या (माया) और जीवात्मा नाम दिये गये हैं, को लेकर जीवात्माओंके स्थूल शरीर तककी परम्पराका नाम ही सृष्टि या संसार माना गया है, क्योंकि सांख्यदर्शनकी तरह वेदान्तदर्शनकी मान्यताके अनुसार भी पूर्वोक्त आपत्तियोंके आधारपर एक परब्रह्म तत्त्वसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वोंकी उत्पत्तिका समर्थन नहीं हो सकता। गीताके निम्नलिखित श्लोकसे भी मेरी इस कल्पनाका समर्थन होता है—

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥

इस श्लोकमें आत्माका अर्थ परब्रह्म लिया गया है और उससे भिन्न स्वतन्त्र तथा व्यापक आकाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्वको दृष्टान्त देकर उसकी निर्लेपताका समर्थन किया गया है। इससे मालूम पड़ता है कि वेदान्तको परब्रह्मसे आकाशकी उत्पत्ति अभीष्ट नहीं है। प्रत्युत उसकी निगाहमें आकाश एक स्वतन्त्र अनादिनिधन पदार्थ है और आकाशकी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु तत्त्व भी परब्रह्म हैं, सर्वथा पृथक् स्वतन्त्र पदार्थ हैं। ये तत्त्व भी परब्रह्मसे उत्पन्न नहीं हुए हैं।

यहाँपर एक प्रश्न सिर्फ यह उपस्थित हो सकता है कि जब सांख्य और वेदान्त दोनों दर्शनोंमें पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु और आकाश तत्त्वोंका एक तो स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया है और दूसरे सांख्यकी मान्यतामें प्रकृतिसे तथा वेदान्तकी मान्यतामें परब्रह्मसे उनकी उत्पत्तिका समर्थन भी नहीं होता है, तो ऐसी हालतमें ये दोनों दर्शन अधूरे दर्शन रह जायेंगे।

इसका समाधान यह है कि यदि हम यह बात मान लेते हैं कि यह दोनों दर्शन उपयोगितावादके आधारपर प्रादुर्भूत हुए हैं अर्थात् इन दोनोंमें सिर्फ लोककल्याणोपयोगी तत्त्वोंका ही वर्णन किया गया है तो फिर यहाँपर यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि सांख्य और वेदान्त दर्शनोंमें पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंकी न तो प्रकृति अथवा परब्रह्मसे उत्पत्ति मानी गई है और न इनका स्वतंत्र अस्तित्वके आधारपर ही वर्णन किया गया है, किन्तु इनका स्वतंत्र अस्तित्त्व स्वीकार करते हुए भी लोककल्याणके लिए उपयोगी न होनेके कारण इन दोनों दर्शनोंने इन तत्त्वोंके कथनके बारेमें सिर्फ उपेक्षावृत्ति धारण की है।

जैनदर्शन भी यद्यपि दूसरे सभी भारतीय दर्शनोंकी तरह उपयोगितावादके आधारपर उत्पन्न हुआ है। परन्तु जैनदर्शनमें उपयोगितावाद और अस्तित्ववाद दोनों वादोंके आधारपर स्वतंत्र दो प्रकारकी तत्त्वमान्यतायें पाई जाती हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंकी मान्यता उपयोगितावादके आश्रित है, क्योंकि इस मान्यतामें सिर्फ जीव, जीवका संसार और उसके कारण तथा जीवमुक्ति और उसके कारणरूप उपयोगी तत्त्वोंको ही स्थान दिया गया है और जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन ६ तत्त्वोंकी मान्यता अस्तित्ववादके आश्रित है, क्योंकि इस मान्यतामें लोककल्याणोपयोगिताका ध्यान रखते हुए जगतके सम्पूर्ण पदार्थोंके अस्तित्वपर सामान्यतया विचार किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org